गीति काव्य परम्परा एवं अनुगीत दर्शन

डॉ प्रमोद कुमार मिश्र

मुक्तक :

मुक्तक, काव्य की वह विधा है जो अभिव्यक्ति में किसी अन्य पद्य की आकांक्षा नहीं रखती तथा अपने अर्थ में पूर्ण एवं स्वतंत्र होती है। मुक्तक में एक कथानक एक छन्द में पूर्णतः विहित होता है। दोहा, कुण्डलियां, बरवै, सोरठा, कवित्त, सवैया तथा मालिनी छन्द आदि सभी मुक्तक है। मुक्तक में भावों की गम्भीरता का समावेश तो होता ही है, उक्ति वैचित्र्य का चमत्कार भी निहित होता है, कलाकारिता भी होती है, परन्तु विस्तृत दृष्टिकोण एवं सूक्ष्म निरीक्षण का विस्तार नहीं पाया जाता है। प्राक्प्रचलित परिपाटी के आधार पर मुक्तकों का आश्रय लेकर कोई एकमात्र रचना नहीं हुई। कवि सम्मेलनों अथवा कवि–गोष्ठियों में काव्य के पूर्व मुक्तक आवश्यक माना जाने लगा। अतएव भावों की चमत्कारी उक्ति के साथ मुक्तकों की रचना भी बहुलता के साथ हुई।

मुक्तकों की रचना या तो उर्दू शैली पर हुई अथवा मुक्त छन्द के परिप्रेक्ष्य में। ये मुक्तक किसी परिस्थिति अथवा सरस एवं मनोमुग्धकारी भाव आदि के सूक्ष्म चित्रण हुआ करते हैं। इनकी रचना में कवि का लक्ष्य प्रतिभा–प्रदर्शन, जनमन को आश्चर्यचकित करना एवं रचना की अंतिम पंक्ति द्वारा वाह! वाह! की उपलब्धि मात्र होती है। शास्त्रीय मुक्तकों की रचना नगण्य ही है। मुक्तक के सर्जकों में डॉ0 कृष्णलाल 'हंस', नीरज, नरोत्तमदास पाण्डेय 'मधु', तरल, बलदेवप्रसाद मिश्र, शारदा प्रसाद वर्मा 'भुशुण्डि', उमादत्त सारस्वत, रूपनारायण पाण्डेय, केशव मिश्र 'अशंक', द्वारिकाप्रसाद शुक्ल, प्रणयेश शुक्ल, करूणेश, दयाशंकर दीक्षित 'देहाती' आदि का नामोल्लेख किया जा सकता है, जिनकी फुटकर रचनाएँ विभिन्न पत्र–पत्रिकाओं में बिखरी पड़ी हैं। वैसे मुक्तक–रचनाओं में जो भी सफल प्रयास हुआ है वह सन् 1950 ई0 के बाद विशेष उल्लेखनीय है। इस दिशा में बेढब बनारसी, बेधड़क बनारसी, रमई काका, काका हाथरसी तथा चोंचजी आदि के नाम विषेश सराहनीय है।

गीति – प्रबन्धात्मक शैली से परे गति, लय, सौन्दर्यव्यंजना और गेयता से युक्त मुक्तक के अनुकरण पर – किन्तु उससे किंचित भिन्न–गीति काव्य की एक अलग विधा है। मुक्तक की भांति यह भी अपने में पूर्ण एवं स्वतंत्र अस्तित्व वाला होता है। छन्द की दृष्टि से यह मुक्तक से सन्निकट ही है। कुछ मौलिक विषेशताओं के कारण यह प्रबन्ध एवं मुक्तक काव्य से भिन्न है। गेयता, संक्षिप्तता, भावसघनता, सौन्दर्याभिव्यक्ति, वैयक्तिकता, स्वानुभूत सहजज्ञान का सरल निवेदन आदि तत्व गीति के लिए आवश्यक माने जाते हैं। प्रबन्धकाव्य में कवि को अपनी प्रतिभा–प्रदर्शन का पूर्ण विस्तृत क्षेत्र मिलता है। मुक्तक में उसे यह कार्य अत्यन्त सावधानी और दक्षता के साथ एक निश्चित छोटी से परिधि में सूक्ष्मता से करना होता है। गीति–काव्य में कवि इन दोनों के मध्य स्थित होता है। परिणामतः कवि को मनोमुग्धकारी कुछ विशेष प्रसंगों तक ही अपने को सीमित कर सृजन के स्पर्शमात्र से ही आह्लादोत्पादन का प्रयास करना पड़ता है। अस्तु, 'गीति एक विधा है – और समसामयिक परपरिवर्तनों के साथ चिरन्तन विधा है। यह मात्र अन्वेषित नहीं, बल्कि मानव–मन की सहजात विधा है।'[1] इस विधा के पांच प्रमुख तत्व – वैयक्तिकता, संगीतात्मकता, स्वाभाविक भावाभिव्यक्ति, भावात्मक भावाभिव्यक्ति तथा सरल एवं कोमल भाशा–षैली स्वीकार किये गये हैं।

'स्वर्णधूलि' की मर्म–कथा, प्रणय–कुंज, शरद–चाँदनी, मर्म–व्यथा, स्वप्न–बंधन, स्वप्न–देही, प्रणयाकांक्षा, रस–श्रवण आदि कवितायें, ''शुद्ध गीति–काव्य के सुन्दर उदाहरण हैं और रसव्यंजना की दृष्टि से इन संग्रहों की मधुरतम कृतियां हैं। इनसे आत्म–रस से भीगी, ऐन्द्रियता के कर्दम से मुक्त एक शान्त स्निग्धता मिलती है। ये कवितायें परिष्कृत आत्मनुभूति की सहज उद्गीतियाँ हैं। सहजता का गुण जो गीति–कविता का मूल तत्व है, वास्तव में इन्हीं कविताओं से मिलता है।''[2]

प्रगीत – गेयता के कारण प्रगीत को भी गेय काव्यान्तर्गत स्वीकार किया गया है। संगीत गीत का अभिन्न तत्व होने से गीत को प्रगीत मुक्तक भी कहते हैं।''[3] 'साहित्य, संगीत, कला विहीनः। साक्षात् पशु पुच्छ विशाणहीनः' से स्पष्ट है कि काव्य–कला और संगीतकला का अभिन्न संबंध रहा है। 'तंत्रीनाद कवित्तरस' आदि उक्तियों के द्वारा समय–समय पर कवियों ने इसे दुहराया है। यही नहीं अपितु बुद्धि की अधिष्ठात्री देवी सरस्वती, वीणावादिनि के रूप में कल्पित की गयी। पाश्चात्य काव्यशास्त्रियों ने भी 'लिरिक' की गीति से साम्यता स्थापित की है।

लोक धुन (लय) पर आधारित गेयता से परिपूर्ण साहित्यिक कविताओं की श्रेणी में देखिए सर्वेश्वरदयाल सक्सेना को – चुपाई मारौ दुलहिन। मारा जाई कौआ![4] शीर्शकान्तर्गत रची गयी रचना जिसमें घरेलू वातावरण, बोलचाल की आपसी भाषा का प्रयोग, दैनिक जीवन की घटित घटनायें, अधिकांश समाज की दयनीय दशा का अंदाज बड़ी ही सुन्दरता और चुटकी के साथ दिया गया है।

संगीत – अतः यह निश्चित हो जाता है कि संगीत का गीत से अटूट संबंध है। लेकिन संगीत का स्वतंत्र अस्तित्व गीत या प्रगीत के संगीत से भिन्न है। विवेच्यकाल में प्राचीन संगीत–सिद्धांतों के आधार पर गीतों की रचना न हो सकी। लय, ताल, गति, सम, आरोह एवं अवरोह आदि नियमों का पदे–पदे अनुकरण नहीं किया गया। मुक्त छन्दों के प्रयोग–बाहुल्य से गीतों का स्वरुप बदल गया। कविता दिनोंदिन संगीत से दूर हटती जा रही है। परम्परानुमोदित गेयता को मुक्त वातावरण में विचरण कराकर मात्रा या वर्ण की श्रृंखला से जकड़ी हुई गीतविधा को कवि अमान्य करता जा रहा है। भावों और विचारों के साथ–साथ आन्तरिक अभिव्यक्ति की लय और ताल पर ही सहज गति से थिरकने वाली पद्यबद्ध पंक्तियों में ही आज गीतकार अपनी संतुष्टि खोजता है। इसलिए उत्तरोत्तर गीत गेय न होकर पाठ्य होते जा रहे हैं। लेकिन फिर भी इसका तात्पर्य यह नहीं कि गीतों की परिचित परिपाटी लुप्त हो चुकी है। श्रीमती तारापाण्डे, हीरादेवी चतुर्वेदी, रूपकुमारी वाजपेयी, महादेवी वर्मा आदि के गीत विभिन्न पत्र–पत्रिकाओं में प्रचुर मात्रा में बिखरे पड़े हैं, जिनमें प्राचीन गीत–शैली का अनुगमन सक्षमता से मिलता है।

आलोच्यकाल में लोकधुनों पर आधारित लोकगीतों का प्रचुर सृजन हुआ। पूर्वी और भोजपुरी गीतों का एक रिवाज–सा दृष्टिगोचर होता है। इस परम्परा को बल देने वालों में : हरिराम द्विवेदी, नगेन्द्रमणि 'मंजुल', बंशीधर शुक्ल, बालस्वरुप 'राही', चन्द्रमौलि उपाध्याय, प्रभुनाथ मिश्र तथा राहगीर आदि का नाम मुख्य रूप से लिया जा सकता है। भोजपुरी–परम्परा से हटकर नवीन परिवेश में गीतों की रचना करने वालों में नीरज, बच्चन, केदारनाथ सिंह, डॉ0 शम्भुनाथ सिंह, गिरिजा कुमार माथुर, आरसी प्रसाद सिंह, महादेवी वर्मा, डॉ0 राम कुमार वर्मा, डॉ0 मोहन अवस्थी, धर्मवीर भारती, भवानी प्रसाद मिश्र, नरेन्द्र शर्मा आदि उल्लेख्य हैं।

आचोल्यकाल में गीतों और प्रगीतों की रचना में स्वरूप वैविध्य का बाहुल्य है। लोकगीतों के प्रभाव के कारण प्रगीतों की टेक प्रारम्भ में तो रखी गयी, परन्तु सम्पूर्ण पद से आकार में अत्यन्त बड़ी रची गयी –

मोरचा बिखर न जाय, गिर न जाय काल संतरा, उसे सम्हालना
मशाल थामना।'[5]

साथ ही टेक की पंक्ति को पद की पूर्ति पर स्पष्ट करके गीत में एक नवीनता लायी गयी। यही नहीं बल्कि ऐसे गीतों में टेक का स्थान तीन–चार पंक्तियों की रचना के उपरान्त निश्चित किया गया।[6] उर्दू काव्यशैली के आधार पर प्रगीतों की रचना देखिए –

बिजलियों से कहाँ तक डरें।
ये घटायें घिरें तो घिरें।
प्रश्न है देष का सामने
व्यक्तिगत दर्द से क्या तिरें।[7]

विमर्ष्याधीन काल के गीतों पर आंचलिकता का प्रभाव विशेष रूप से द्रष्टव्य है। यह प्रभाव लोकगीतों के माध्यम के साथ–साथ लोकधुनों पर आधारित होने के कारण भी पड़ा है। स्थान और अंचल विशेष की धुनों के अनुकरण पर अनेक गीतों की रचनाएं हुई। ऐसे रचनाकारों में 'बच्चन जी' अग्रगण्य हैं –

''जाओं लाओं पिया नदिया से सोन मछरी। पिया सोन मछरी।
जाओं लाओं पिया नदिया से सोन मछरी।[8]

उक्त रचना स्त्री और पुरुषों के दलों के मध्य सहगान रूप में गाये जाने वाले उत्तर प्रदेश की एक लोकधुन 'ढिंढिया' पर आधारित है।

आत्मप्रक्षेप – जिस भांति संगीत गीत के लिए आवश्यक है, उसी भांति आत्मप्रक्षेप भी प्रगीत के आवश्यक तत्वों में से एक है। गीत और संगीत दोनों ही ध्वनि (नाद) और लयाधारित होने से अटूट रूप से सम्बन्धित हैं। संगीत का अमूर्त रूप काव्य में मूर्त रूप धारण कर अन्तर्जगत को बाह्यरूप में प्रकट कर श्रोता या पाठक को मुग्ध करता है। आत्मप्रक्षेप अपनी अनुभूति, अपने सुख–दुख, अपनी–वेदना और अपनी सरस एवं सहज अभिव्यक्ति है। भावों की आत्माभिव्यक्ति तो सतत् और सनातन है, किन्तु प्राचीन और नवीन आत्माभिव्यंजना में अंतर यह रहा है कि पहले का कवि अपनी बात किसी अन्य के माध्यम से कहता था, किन्तु अब कवि किसी का आश्रय न ग्रहण कर अपनी अनुभूति स्वयं अपने पर सीधे घटित कर व्यक्त करता है। अब माध्यम न रखकर अपनी बात अपने शब्दों में अपने लिए और अपने तरीके से कही जाने लगी –

तुम मिले मुझको सहारा मिल गया।
जानता हूँ जबकि मेरी सांस तक मेरी नहीं है।
और तो सब और मेरी लाश तक मेरी नहीं है।9

सामान्य और निम्न स्तर के विषयों को वर्णनात्मक शैली का आश्रय ग्रहण कर जब जबरदस्ती कोई अभिव्यक्ति दी जाती है तो गीत का गुण एवं सौन्दर्य नश्ट हो जाता है और उसकी गहरी छाप की जगह भोंड़ा प्रदर्शन हो जाता है –

मैनें भी लिखी कहानी थी।
दो नर बरसाती के नीचे,
थे खड़े सांस अपनी खींचे,
कुछ हिलते और न डुलते भरे,
मानो फोटो खिंचवानी थी।[10]

लेकिन भावों की उत्कृष्टता और शैली की सहजता के साथ यही रचना प्रभावकारी भी हो जाती है।[11]

पत्रगीति – अपने मन की बात, अपना अनुभव, विचार तथा अपने सुख–दुःख का निवेदन गीत में जिस भांति होता है, पत्र में भी उसी भांति किया जाता है। अंतर केवल इतना है कि गीत में हम अपनी आप–बीती अथवा अपनी बात किसी को सम्बोधित करके नहीं कहते, जबकि पत्र–गीति में हम किसी से उसकी अभिव्यक्ति, सम्बोधन के आश्रय में करते हैं। गीत में भावुकता अधिक होती है, किंतु पत्र में यथार्थवादी चित्रण प्रधान होता है। विचारों का तारतम्य होता है। भावों की अप्रधानता होती है और शैली वर्णन प्रधान होती है।

आलोच्यकालीन पत्र–गीति युद्ध–सन्दर्भ, देश–भक्ति, राष्ट्रभक्ति और विरह निवेदन आदि पर विशेष आधारित हैं। जीवन के अन्तिम क्षणों में अपने पूर्व किए कर्मों का स्मरण और उसका प्रायष्चित एक साधारण–सी बात है। एक चित्र देखिए –

आज मैं पढ़ रहा हूँ फिर से कीट्स की कविता,
और आंसू मेरी आंखों में थरथराते हैं।
मेरी नजमा! मैं इन ओठों को कहां तक रोकूँ,
जो गीत अब भी इसी जिन्दगी के गाते हैं।[12]

साथ ही परदेशी की वियोगजन्य 'अश्रुभीगी भार बोझिल! रूँधी घड़ियाँ[13] की अभिव्यक्ति कालिदास के 'मेघदूत' की याद दिलाने लगी। भाई–बहन का प्रेम–प्रदर्शन, सैनिक का अपने और अपने साथियों के कष्टों की याद दिलाते हुए बहन को सम्बोधित करना और पुनः उसका उत्तर, विमर्ष्यकालीन काव्य की अनुपम त्याग–भावना के द्योतक हैं।

मेरी लाडली बहन
इन चूड़ियों को खोलकर
बाजार में बेंच आओ
और कुछ पौंड ऊन खरीद लाओ।[14]

इसका उत्तर भी त्याग एवं स्नेह का पवित्र चित्रण है –

मेरे सोना भाई!
तुम्हारी चिठ्ठी ने मेरी आंखे खोल दी हैं।
खोल दी हैं मैनें अपनी बहुत साध–भरी।
सोने की चूड़ियाँ।[15]

किन्तु अब विज्ञान की उत्तरोत्तर उन्नति और श्रीवृद्धि के कारण विरहिणी के लिए वियोग दुखदायी न हो सकेगा। विज्ञान के चमत्कारों के फलस्वरुप संयोग का पूरा–पूरा आनन्द प्राप्त करने की उद्घोषणा भी पत्रों में होने लगी। अब विज्ञान शीघ्र ही ऐसी व्यवस्था को

सच करने वाला है जबकि 'चुम्बनों का पार्सल' प्रेयसी नित्य खोला करेगी।[16] पत्रगीति का मधुर, भावात्मक, स्नेहप्लावित, वियोग का करूण और हृदय स्पर्श 'भारती' जी के पत्रों में प्राप्त होता है।[17]

व्यंग्यगीत – इसमें व्यंग्यभाव प्रधान होता है। यह व्यंग्य हास्योत्पादक, कटूक्ति, उपहास तथा गंभीर आदि किसी भी दृष्टिकोण का हो सकता है। किन्तु व्यंग्यगीत अधिकांशतः हास्योत्पादक ही होते हैं। इससे किसी की चुटकी लेने का लक्ष्य सिद्ध किया जाता है। विमर्ष्यकालीन व्यंग्यगीतों में सामाजिक अनैतिकता, शासकीय भ्रष्टाचार, बढ़ती हुई फैषनपरस्ती आदि अनेक पहलुओं को स्पर्ष करने का मार्मिक और सफल प्रयास किया गया है।[18] व्यंग्य काव्य का आलोच्यकालीन सर्वोत्कृष्ट स्वरूप 'निराला' जी के 'कुकुरमुत्ता' में देखा जा सकता है।

इसी सन्दर्भ में ओड (सम्बोधगीत), शोकगीत, सॉनेट आख्यानकगीति, विवृतकाव्य, गीतिनाट्य आदि के सम्बन्ध में भी विचार कर लेना अनुचित न होगा। ये पाश्चात्य विधायें बहुत थोड़े अन्तर से एक–दूसरे से भिन्न हैं। प्राच्य, मुक्तक, गीत, और प्रगीत आदि की भांति ये भी एक–दूसरे से सम्बन्धित होते हुए भी पूर्ण स्वतन्त्र तथा भिन्न सत्ता वाली विधायें हैं।

सम्बोधगीत (ओड) – भारतीय काव्यषास्त्र में सम्बोधगीत की कोई स्वतंत्र विधा नहीं स्वीकृत हुई है। यह पाश्चात्य साहित्य का नामकरण है। पाश्चात्य साहित्य में 'ओड' बहुचर्चित रचना रही है। सम्बोधन प्रधान होने के कारण भारतीय साहित्य में इसे सम्बोधगीत कहा गया है। यह गीति वैयक्तिक कम होता है, पराश्रित अधिक। वैयक्तिकता का आग्रह सम्बोधगीत के कवि हठात् आधिकारिक प्रवृत्ति का द्योतक होता है। सर्वेश्वरदयाल सक्सेना का 'प्रगति का गीत', देवेन्द्र कुमार बंगाली का 'कहो तो', 'चातक' का प्रथमदर्षन', विपिन कुमार अग्रवाल की 'रेल', विजय देवनारायण साही की 'विषकन्या के नाम', शमशेर बहादुर सिंह की 'हे अगोरती विभा', भारती की 'थके हुए कलाकार से' आदि अनेक सुन्दर–सुन्दर रचनाओं से विमर्ष्यकालीन काव्य साहित्य समृद्धशाली बना हुआ है। इन सम्बोधगीतों में कवि की वैयक्तिकता भी है और भावात्मक अनुभूति भी। उसकी गंभीर विषय–चेतना भी है और आलंकारिक सृष्टि भी। जीवन का यथार्थ भी है और आदर्श भी। प्रकृति का मनोरम परिवेश भी है तथा संगीत का झंकृत नर्तन भी।

शोक गीति – शोक गीति निकट संबंधी की मृत्यु पर लिखे गए गेय काव्य को कहते हैं। इस विधा में गीतकार का व्यक्तिगत भावात्मक संबंध होता है। किन्तु आलोच्यकालीन काव्य में शोकगीतों की परिधि विस्तृत होकर निकट संबंधियों के अग्रगण्य कर्णधारों की मृत्यु, महान साहित्यकारों, कवियों और समाजसुधारकों की मृत्यु पर रची गयी रचनाओं तक पहुंच गयी है।

इन शोक गीतों में व्यक्तिगत संबंधों, मृतव्यक्ति के सत्कार्यों, त्याग, तपस्या और बलिदानों का स्मरण सामान्य भावभूमि पर ही नहीं अपितु दार्शनिक परिवेश में भी किया जाता है। परिणामतः भाववैविध्य के कारण अनेक संचारियों का उदय और अस्त ऐसी कविताओं में क्षण–प्रतिक्षण होता रहता है। स्वर्गीय श्री बलभद्र प्रसाद जी दीक्षित 'पढ़ीस' की स्मृति में रचित नरेन्द्र शर्मा का 'वह साथी', 'सुभाष की मृत्यु पर' शीर्षकान्तर्गत भभूतीजी की भावाभिव्यक्ति ऐसी ही उत्कृष्ट रचना है। निकटतम सम्बन्धियों की दृष्टि से प्रभाकर माचवे द्वारा रचित 'अपनी माता की मृत्यु पर' शीर्षक शोकगीत एक उत्कृष्ट रचना है, जिसमें शोक के साथ करूणाभिभूत होना स्वाभाविक हो जाता है। मानव जीवन का अन्तर्राष्ट्रीय सम्पर्क होने के कारण आज का भावात्मक सबंध हर देश और समाज तक सीमित न रह सका, अपितु अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर दूसरे देष के महान कवियों, साहित्यकारों एवं वीरों की मृत्यु पर भी शोकसंतप्त श्रृद्धाजलियाँ अर्पित की गयी। प्रभाकर माचवे का 'रोम्यां रोलां के प्रति' तथा 'पास्कर नाक की मृत्यु पर' शीर्षक शोक गीति ऐसी ही रचनायें हैं।

सॉनेट – सॉनेट का हिन्दी रूपान्तर 'चतुर्दषपदी' है। अतः चौदह पंक्तियों में समाप्त होने वाली समस्त रचनायें सॉनेट के अन्तर्गत स्वीकृति की गयी। इसके अतिरिक्त अभी तक इस काव्य–विधा के न तो कोई विशेष लक्षण ही निर्धारित हुए हैं और न इसे किसी विशेष छन्द की सीमा में ही आबद्ध किया जा सका।

सॉनेट में विचारों का उत्थान, चरम परिणति और अन्त में भावनाओं में उसका अवसान होता है। सॉनेट की अन्तिम दो पंक्तियों का विशेष महत्व होता है। भावों का नाटकीय ढंग से विलयन और कथा की सम्यक् आपूर्ति अन्तिम दो पंक्तियों में अन्तर्मुक्त होकर चमत्कार उत्पन्न करती है। यही इसकी सफलता है।

आलोच्यकाल में सॉनेट के प्रमुख प्रणेता प्रभाकर माचवे, सूरतदास, सारंग, मुक्तिबोध, किशोरीलाल गुप्त तथा रामबहादुर सिंह आदि हैं। इनके सॉनेट में भाव, लय एवं मनोवेगों का सुन्दर सामंजस्य पाया जाता है। प्रभाकर माचवे के अधिकांश सॉनेट तुकांत ही हैं और रामबहादुरजी ने तो मुक्त छन्द का आश्रय लेकर बड़ी–बूढ़ी औरतों की दिनचर्या का सजीव चित्र उतारा है।[19]

आख्यानक गीति – आख्यानक गीति शौर्य, पराक्रम, उत्साह आदि क्रियाओं पर आधारित जीवन के सामान्य पक्ष का प्रकथन है। इस प्रकथन में वर्ण्यवस्तु के नायक को अतिहत, अकल्पनीय, अलौकिक शक्ति तथा प्रतिभा से सम्पन्न प्रदर्शित किया जाता है। सीधी–सादी सरल एवं ओजप्रधान शैली में अभिव्यक्ति की जाती है।

इन आख्यानक गीतों के वर्ण्यविषय प्रसिद्ध लोककथाओं एवं लोक गाथाओं पर आधारित होते हैं। किसी प्रसिद्ध घटना को लेकर उसे गीतबद्ध कर दिया जाता है। अधिक घटनाओं के होने पर उनका समायोजन इस भांति किया जाता है कि तारतम्य का विच्छेद खटकने न पाये और सम्पूर्ण घटना एक परिस्थिति की समुद्भूत–सी प्रतीत हो। शैली वर्णन प्रधान होती है। अतः प्रसाद–ओज गुणसमन्वित वर्णनात्मक शैली के माध्यम से विषय को इतना हृदयाग्राही बनाने का प्रयास किया जाता है कि सामान्य ज्ञात कथा भी पाठक एवं श्रोता दोनों को अभिभूत कर ले। कुँ0 चन्द्रप्रकाश सिंह द्वारा रचित 'विदुला'[20] विवेच्यकालीन आख्यानक गीत का अच्छा प्रयास है। वीररस युक्त क्षत्राणी का शौर्य–प्रदर्षन, जीवन के प्रति निर्मोह, वंशानुकूल स्वाभिमान, उच्च जीवनादर्श और अतुल शौर्य का सुन्दर प्रतिपादन इस गीत में प्राप्त है। इसी भांति 'रामविलास शर्मा' का 'दारा शिकोह'[21] भी एक उत्तम आख्यानक गीत है।

विमर्ष्याधीनकाल में व्यक्तियों के स्थान पर किसी जनपद विशेष का प्रकथन उसकी शौर्य शक्ति के सन्दर्भ में एक नया प्रयोग है।[22] अभारतीय स्थलों का काव्य में इस दृष्टि से समावेश विशेष रूप से उल्लेखनीय है।[23] इस दिशा में शिल्पविधि की नवीनता यह रही है कि पौराणिक आख्यानकों को आधार मानकर शान्त एवं करूणरस के परिप्रेक्ष्य में ऐसे गीतों की सृष्टि हुई जिसमें यूनानी पुराणपुरुष 'प्रमथ्यु'[24] की कल्पनात्मक सामग्री को इस प्रयोग का एक अच्छा उदाहरण माना जा सकता है।

विवृतिकाव्य – गेयता के अभाव में वर्णनात्मक शैली में लिखी गयी कविताएं विवृतिकाव्यान्तर्गत मानी जाती हैं। ऐसे काव्यों में प्रकथन सूचनार्थ अधिक होता है, काव्यात्मक कम। वस्तुतः यह सूचनाओं का एक संकलन होता है। श्रीकांत वर्मा की 'चेकोस्लोवाकिया' तथा धर्मवीर भारती की 'प्रमथ्युगाथा' इस कोटि के सफल प्रयास हैं। ऐसी रचनाओं में भावात्मक प्रधानता कम होती है तथा गेयता अनिवार्य तत्व नहीं होता। भाषा सरल और प्रवाहमय तथा रचना क्रमिक एवं घटनाप्रधान होती है।

गीतिनाट्य (ओपरॉ) – हिन्दी गीतिनाट्य भारतीय साहित्यशास्त्र की वस्तु है। विद्वानों का विचार है कि अंग्रेजी के 'ओपरॉ' से यह प्रभावित भले ही हो, किन्तु अंग्रेजी की देन नहीं है। गीतिनाट्य में गीतिमत्ता का प्राधान्य होता है और शिल्प परिवेश में नाट्य शास्त्र के निकट होती है। संवादात्मक शैली तथा संक्षिप्त कथानक आदि से समन्वित नाटकीय परिप्रेक्ष्य में इसका सृजन होता है। प्रभाकर माचवे द्वारा रचित 'मुक्तिदेवता!प्रणाम![25] रेडियो गीतिनाट्य के अतिरिक्त कुँ0 चन्द्र प्रकाश सिंह द्वारा रचित 'अपराजिता'[26] (यद्यपि इसे लेखक ने ध्वनिरूपक के अन्तर्गत स्वीकार किया है) गीतिनाट्य का एक सुन्दर प्रयोग ही है। धर्मवीर भारती का 'अंधायुग' तथा 'नील–झील' को भी इस कोटि में निःसंकोच रखा जा सकता है।

अनुगीत – प्रगीत में आत्म–प्रक्षेप रहता है। उसमें तुक बदलती रहती है। बीच में कुछ पंक्तियाँ भिन्न तुक की आ जाती है। लेकिन इस काल में रचनाकारों ने एक ही तरह की तुल वाली ऐसी कवितायें लिखीं जिनमें एक ही तुक चलती रहती हैं, बस तुक से पहले का शब्द ऐसा होता है, जिसकी लय का शब्द खोजकर रखा जाता है। हिन्दी में इस प्रकार की रचनायें बहुत हुई हैं। कवि लोग उन्हें 'गजल षीर्शक दे देते हैं। परन्तु यह नाम ठीक नहीं है।

'अनुगीत' षीर्शक से डॉ0 मोहन अवस्थी की सर्वप्रथम प्रकाषित रचना की प्रारंभिक पंक्तियाँ निम्नांकित हैं –

रत्नकण हमने बिखेरे बार–बार।
ले गए भर कर लुटेरे बार–बार।
उम्र बीती शून्य ही को नापते।
फिर सबेरे फिर बसेरे बार–बार।
हैं इरादे चाँद–सूरज के मगर,
जिन्दगी को भूमि घेरे बार–बार।[27]

अनुगीत की ओर ध्यान आकृष्ट करते हुए डॉ0 अवस्थी ने लिखा है, ''हिन्दी में रदीफ़–काफ़िया–युक्त रचनाओं को 'गजल' कहकर पुकारा जाता है, गेयता के लिहाज से उन्हें पद, गीत, प्रगीत आदि नाम दिये गये हैं। मैं रदीफ़्–काफ़िया वाली नये रचना को 'अनुगीत' कहता हूँ, क्योंकि अनुगेयता के साथ लयानुवर्तन भी है।''[28]

गीत की इस विधा का प्रवर्तन डॉ0 मोहन अवस्थी के द्वारा किया गया था। डॉ0 अवस्थी का प्रथम एवं मान्य अनुगीत धर्मयुग[29] में छापा था जो कि इस प्रकार है–

हमने हृदय में चोट को अडोल किया है।
संवेदना का सिर्फ यही मोल दिया है
मधुपान कराने का मधुरतर है तरीका
जैसे गरल में और गरल धोल दिया है
क्या चाहिये शब्दों का चमत्कार देखिये
गोपाल ने मिट्टी भरा मुंह खोल दिया है
वे फेनपिंड एकदम विलीन हो गये
हर अर्थव्यंग्य बन गया जो बोल दिया है
समझे उसे कि आपको कि प्रश्न मेरा जो
सीधा था, पर जवाब गोलमोल दिया है
जीवन व मृत्यु का हुआ मालूम भेद यों
इतिहास ले लिया हमें भूगोल दिया है
अब मैं कटूँ छिदूँ, नहीं कुछ दोष किसी को
किस्मत ने मोतियों को तोल–तोल दिया है।

वैदिक साहित्य में आये 'अनुवादकः' शब्द से प्रेरित होकर डॉ0 अवस्थी ने 'अनु' उपसर्ग के अर्थ पर विस्तृत अध्ययन किया। यद्यपि कि संस्कृत के शब्दकोषों में अनु का अर्थ छोटा, पश्चात और सादृष्य है। लेकिन भागवत महापुराण में 'अनुगीत' का अर्थ 'संक्षिप्त परिचर्चा' है –

अवतारानुगीतं च
सर्ग प्रधा निकोऽग्रतः[30]

इसी अर्थ के आधार पर डॉ0 अवस्थी ने स्वयं के द्वारा प्रवर्तित गीत की इस दिशा का नाम 'अनुगीत' रखा[31]

भागवत महापुराण में ही 'अनु' के अन्य अर्थ 'अनुष्ठित' अनुयायी अनुपदवीं त्र अनष्ठित भार्गम्[32] अनुकूल'[33] निरंतर[34] आदि दिये गये हैं। श्रीमद् भागवतगीता में 'अनु' का अर्थ 'अनुभव' दिया गया है –

यदा भूतपृथग्भावमेकस्थ मनुपष्यति, तत एवं च
विस्तारं, ब्रह्मसंपद्यते तदा।।[35]

इसके अलावा 'अनु' का अर्थ अनुक्रम, तथा अनुवर्तन आदि भी प्राचीन ग्रंथों में मिलते हैं।[36] अनुवर्तन में लयानुवर्तन, टेकानुवर्तन, शब्दानुवर्तन आ जाते हैं अनुगीत शब्द से अनुगीत की अनुगेयता तो व्यंजित होती है, यह भी पता चलता है कि यह गीत के पश्चात आया है।

यद्यपि कि अनुगीत शीर्शक से एक रचना 1975 के पूर्व भी 1973 में प्रकाषित हो चुकी थी[37] किन्तु स्वयं अनुगीत प्रवर्तक कवि डॉ0 मोहन अवस्थी का भी यह मानना है कि अनुगीत की शुरूआत धर्मयुग में छपे प्रथम अनुगीत से ही हुई।[38] और वे इसे अपना प्रथम अनुगीत मानते हैं। सत्तर के दशक के बाद से धीरे–धीरे अनुगीत को काव्य में गौरवमयी स्थान मिला। 'एक अन्तराल के बाद तुकबन्दी अनुगीत का वाह्य ढांचा है। अपने शिल्प विधान में यह सर्वथा भिन्न विधा है। छायावादोत्तर काव्यान्दोलनों तथा साहित्यिक गुटबन्दियों से अलग तथा स्वतंत्र रहकर काव्य सृजन में पूर्ण निष्ठा से समर्पित कविवर मोहन अवस्थी की प्रतिभा ने जीवन विविधता को आत्मसात किया है। उनकी काव्य साधना की पुष्ट भूमि पर उनके अनुगीतों की धारा प्रवाहित हुई है।''[39] वस्तुतः अनुगीत वास्तविकता के धरातल पर यथार्थ अनुभव, कठोर सामाजिक विसंगति पीड़ा एवं दुःख की सहज अभिव्यक्ति है।

मेरा हरेक अक्षर पीड़ा की कुंडली है
हर शब्द व्यग्र धड़कन हर अर्थ इशारा है[40]

हालांकि गज़ल भी दो बन्द की रचना होती है परन्तु अनुगीत आर्थिक, शाब्दिक एवं मात्रिक तीनों दृष्टि से गजल से सर्वथा भिन्न रचना है जो कि हिन्दी साहित्य को डॉ0 मोहन अवस्थी की मौलिक देन है। आधुनिक समय में अधिकांश गज़ले प्रेम श्रृंगार पर आधारित होती हैं किन्तु अनुगीत कड़वे सत्य का यथार्थ 'वैकुंठी प्रेम' उच्च भावगांभीर्यता पर आधारित एक श्रेष्ठ काव्य विधा है।

चमक समवेदना बोझिल घुटन ज्वाला कसक आंसू,
धरा के व्योम तक पसरे हुये हर द्वार हैं अपने।[41]

'अनुगीत गजल की अस्मिता को स्पर्ष करता हुआ अथवा समग्ररूप से उसे अपने आप में समेटे हुये उससे भी ऊपर जाकर परन्तु अर्थगांभीर्य युक्त स्पष्टता से अपनी बात कह जाता है जिसका अर्थ लगाना मुश्किल हो जाता है। गज़ल फारसी बहरों की परस्परा में लिखी एक विषेश भूमि पर एक विषेश भाव संबंधी रचना होती है। अनुगीत की भाव वस्तु उसकी अपनी है।[42] यद्यपि कि अनुगीत को लय में ढालने में मात्रिक, वार्णिक छन्दों एवं इनमें से किसी का भी अन्धानुकरण नहीं है। अनुगीत की उपजाऊ भूमि में लयबद्ध अनुगीत फारसी बहर को किस प्रकार अपने में समेट लेती है उसका एक सुन्दर उदाहरण दृष्टव्य है।

यह सकल संसार सपने तूल है,
साँच नाही मीत भारी भूल है।[43]

इन पंक्तियों ने अंत में लघु गुरू के स्थान पर गुरू लघु रखने पर अनुगीत का काव्य उत्थान इस प्रकार होगा –

रत्न कण हमने बिखरे बार–बार,
ले गये भरकर लुटेरे बार–बार।[44]

इस छन्द कुल बीस मात्राएं है तथा ण, ग, र, आदि सभी वर्ण स्वर के अंत में आ जाते हैं। अतएव यह शुद्ध हिन्दी में लयबद्ध छन्द है। गीत के सभी चरण पीयूश वर्ष छन्द से साम्यता रखते हैं अतः कहा जा सकता है कि पीयूश वर्ष छन्द अनुगीत का आधार स्तम्भ है केवल ध्रुवक की लय अलग–अलग करने के कारण एक लघु बढ़ा दिया गया है। अतः कहा जा सकता है कि मात्रिक, वार्णिक तथा फारसी छन्दों का प्रयोग अनुगीत में विशिष्ट ढंग से किया गया है। चूंकि कवि स्वयं अपने जीवन काल में अभावग्रस्त रहा एवं दुःख विशाद उपेक्षा का सामना भी कवि ने जीवन भर किया। इस स्थिति में कंटाकीर्ण जीवनानुभव के कारण कवि अनुभवी संवेदनशील और पारखी हो गया है। संसार को छल और पीड़ा कवि के कोमल हृदय को हमेशा परेषान करती रही और चाहे–अनचाहे कवि की यह पीड़ा अनुगीतों व्यक्त हुई है।

बदलूँ किसे–किसे मैं सोचा है विचारा है।''
फिर पास नहीं फटका जिस–जिस को निहारा है।[45]

सन्दर्भ ग्रंथ सूची

1. डॉ0 रामदरश मिश्र : हिन्दी कविता–तीन दशक, पृ0सं0 181।
2. डॉ0 नगेन्द्र : पंत का नवीन जीवन–दर्शन, आस्था के चरण, पृ0सं0 400।
3. डॉ0 मोहन अवस्थी : आ0हि0का0शि0, हिन्दी परिशद प्रकाशन, प्रयाग विश्वविद्यालय, इलाहाबाद, 1962, पृ0सं0 17।
4. सर्वेश्वर दयाल सक्सेना : चुपाई मारौ दुलहिन, तीसरा सप्तक, सम्पादक – (अज्ञेय) भारतीय ज्ञानपीठ, 1984, पृ0सं0 229।
5. वीरेन्द्र मिश्र : मशाल थामना (युद्ध–गीत), धर्म0 (सं0) धर्मवीर भारती, बंबई, 10 अक्टूबर, 1965, पृ0 23।
6. द्रष्टव्य, मोहनलाल अवस्थी 'मोहन' : जिन्दगी, सरस्वती, मार्च 1954, पृ0 192।
7. नरेन्द्र चंचल : प्रगीत–बिजलियों से कहाँ तक डरे, सा0हि0, 6 दिसम्बर, 1965, पृ0 14।
8. बच्चन : सोन मछली का गीत, धर्मयुग, (सं0) धर्मवीर भारती, बंबई, 14 अगस्त 1960, पृ0 7।
9. रमाकान्त अवस्थी : गीत, कादम्बिनी, अगस्त 1961, पृ0सं0 29।
10. शारदाप्रसाद वर्मा 'भुशुण्डि' : गीत, माधुरी, जनवरी 1949, पृ0सं0 418।
11. विनय कुमार अग्रवाल : एक आत्मकथा, न0क0 अंक 5–6, पृ0 150।
12. डॉ0 मोहन अवस्थी : देशदूत, प्रयाग 29–8–1973 ई0।
13. डॉ0 मोहन अवस्थी : अनुगीत, धर्मयुग, 18–5–1975, पृ0 15।
14. सूर्य भानु गुप्त : खुदखुशी से पहले, धर्म0 30 अप्रैल 1961, पृ0 31।
15. जितेन्द्रनाथ पाठक : रूँधी घड़ियाँ, धर्मयुग, 30 जुलाई, 1961, पृ0 5।
16. दीपक गांगोपाध्याय : सोने की चूड़ियाँ, धर्मयुग, 20 जनवरी, 1963, पृ0 15।
17. वन्दना राय : तुम्हारी चिठ्ठी ने मेरी आंखें खोल दीं, धर्मयुग, 20 जून, 1963, पृ0 39।
18. डॉ0 मोहन अवस्थी : पत्र वैज्ञानिक का विरहिणी पत्नी के नाम, सा0हि0 31दिसम्बर 1967, पृ0 13।
19. भारती : एक पत्र–दूसरा पत्र, ठंडा लोहा, पृ0 35 तथा 39।
20. रामगोपाल शर्मा 'दिनेष' : मिलावट का युग है, विशाल भारत सितम्बर 1968, पृ0 59।
21. राम बहादुर सिंह 'मुक्ति' : बड़ी–बूढ़िने, न0क0, अंक–2, पृ0 89।
22. कुँ चन्द्रप्रकाश सिंह : विदृला, अपराजिता, पृ0 29।
23. रामविलास शर्मा : दाराशिकोह, तारसप्तक, पृ0 243।
24. कुँ0 चन्द्रप्रकाश सिंह : डौड़िया खेरे में, सरस्वती जून 1940, पृ0 52।
25. श्रीकांत वर्मा : चेकोस्लोवाकिया, धर्मयुग, 20 अक्टूबर 1968, पृ0 22।
26. धर्मवीर भारती : प्रमथ्युगाथा, सात गीत–वर्ष, पृ0 71।
27. प्रभाकर माचवे : मुक्तिदेवता! प्रमाण! अनुक्षण!, पृ0 96।

28. कुँ चन्द्रप्रकाश सिंह : अपराजिता, पृ0 1।
29. धर्मयुग, सं0 डॉ0 धर्मवीर भारती, 18 मई 1975।
30. भागवात महापुराण 12/12/7।
31. डॉ0 मोहन अवस्थी, हिन्दी साहित्य का विवेचन परक इतिहास, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण–2008, पृ0सं0 403।
32. भागवत महापुराण 5/14/1।
33. भागवत महापुराण 10/9/3/10।
34. भागवत महापुराण 10/3/34।
35. भागवत महापुराण 13/30।
36. डॉ0 मोहन अवस्थी, हि.सा.का. विवेचनपरक इतिहास, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2008, पृ0सं0 421।
37. देशदूत 29 अप्रैल, 1973।।
38. हिन्दी साहित्य का विवेचन परक इतिहास, डॉ0 मोहन अवस्थी वाणी प्रकाशन नई दिल्ली 2008, पृ0सं0 433।
39. डॉ0 सभापति मिश्र, सम्मेलन पत्रिका (शोध त्रैमासिक) हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग, इलाहाबाद, भाग 84, संख्या 4, आश्विन–मार्गशीर्ष, शक 1921, संवत 2056, सन् 1999 (संपादक) विभूति मिश्र, पृ.सं. 11।
40. डॉ0 मोहन अवस्थी, हलचल के पंख, संतोष प्रिन्टर्स, पृ01।
41. डॉ0 मोहन अवस्थी – अग्निगंधा, साहित्य संगम, इलाहाबाद 1982 ई., पृ0 1।
42. डॉ0 सभापति मिश्र, सम्मेलन पत्रिका (सं0) विभूति मिश्र, भाग 54, संख्या 4, आश्विन–मार्गशीर्ष, शक 1921, संवत 2056 सन् 1999 पृ0 सं. 82।
43. डॉ0 मोहन अवस्थी, हलचल के पंख (भूमिका), संतोष प्रिन्टर्स, इलाहाबाद, पृ0सं0 6।
44. डॉ0 मोहन अवस्थी, अग्निगंधा, साहित्य संगम, इलाहाबाद, पृ0सं0 8।
45. डॉ0 मोहन अवस्थी, हलचल के पंख (अनुगीत संग्रह) वितरक, संतोष प्रिन्टर्स, इलाहाबाद 1995 ई0, पृ0सं0 3।

प्रवक्ता– हिन्दी विभाग
एम.ए.एस. पी.जी. कालेज, कुण्डा, प्रतापगढ
सम्बद्ध– इलाहाबाद राज्य विश्वविद्यालय इलाहाबाद